हिंदी आदिवासी साहित्य का स्वरूप, चुनौतियां और संभावनाएं

डॉ. अशोक मोहन मरळे
सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक,
स्नातक और स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय,
इस्लामपुर, तहसील वाळवा, जिला सांगली
मोबाईल क्र. 9623527601
ई मेल- drashokmarale@gmail.com

शोध सार :

नवम् दशक के आसपास के कालखंड में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां तेज हुई जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी शोषण और अधिक तीव्र हुआ। आदिवासी शोषण का प्रखर विरोध करने के लिए तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा हेतु आदिवासी साहित्य लिखा जाने लगा। शोषण का विरोध और अपनी अस्मिता की पहचान इस आदिवासी साहित्य के मूल में है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज आदिवासी साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है। किंतु आदिवासी समाज की तरह आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी जारी है। आज भी आदिवासी साहित्य अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है। इसका प्रमुख कारण आदिवासी समाज, जीवन से बाहरी समाज का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है। आदिवासी समाज से संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्त्वपूर्ण ज़रिया हो सकता है, बशर्ते उसका सही मूल्यांकन किया जाए।

विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल किया जा रहा ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया जा रहा है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी साहित्य की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। जिस तरह दलित साहित्य के संदर्भ में दलित और गैर दलित साहित्यकार के रूप में चर्चा होती रही है, उसी तरह आदिवासी साहित्य और साहित्यकार के संदर्भ में भी चर्चा होती रही है। इसमें अनेक प्रकार के मतप्रवाह दिखाई देते हैं। आदिवासी विमर्श उन ग़ैर-आदिवासी लेखकों को ख़ारिज नहीं कर सकता जिन्होंने आदिवासी समाज और जनजातियों के वास्तविक जीवन यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया। फिर भी दोनों प्रकार के लेखकों में कुछ बुनियादी अंतर है।

बीज शब्द : आदिवासी, जनजाति, समाज, संस्कृति, आदिवासी साहित्य, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति।

मूल आलेख

नवम् दशक के आसपास के कालखंड में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां तेज हुई जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी शोषण और अधिक तीव्र हुआ। आदिवासी शोषण का प्रखर विरोध करने के लिए तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा हेतु आदिवासी साहित्य लिखा जाने लगा। शोषण का विरोध और अपनी अस्मिता की पहचान इस आदिवासी साहित्य के मूल में है। वस्तुतः आदिवासी साहित्य का मूल आदिवासी लोकसाहित्य में है और आदिवासी साहित्य सृजन की परंपरा मौखिक रही है। जंगलों में भगा दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को जारी रखा है। ठेठ जनभाषा में होने और मुख्य प्रवाह से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की तरह ही उपेक्षित रहा। लेकिन अब आदिवासी चेतना से युक्त आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है।

आज आदिवासी साहित्य हिंदी के अलावा अनेक आदिवासी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज आदिवासी साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है। किंतु आदिवासी समाज की तरह आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी जारी है। आज भी आदिवासी साहित्य अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है। इसका प्रमुख कारण आदिवासी समाज, जीवन से बाहरी समाज का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है। आदिवासी समाज से संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्त्वपूर्ण ज़रिया हो सकता है, बशर्ते उसका सही मूल्यांकन किया जाए।

आदिवासी साहित्य मतलब आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य जिसमें आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन-शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का चित्रण करनेवाले साहित्य को हम आदिवासी साहित्य कह सकते हैं। आदिवासी साहित्य स्वांतः सुखाय नहीं लिखा जाता। यह प्रतिबद्ध साहित्य है और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। ‘‘वर्तमान स्थिति में ‘आदिवासी’ शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहनेवाले, विशिष्ट भाषा बोलनेवाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगल,

पहाडों में जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखनेवाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बडे पैमाने पर उनके सामाजिक दुख तथा नष्ट हुए संसार पर दुख प्रकट किया जाता है। उनके प्रश्नों तथा समस्याओं पर जी तोडकर बोला जाता है''[1]

वैश्वीकरण के चलते मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफा और लूट का खेल शुरू हुआ। इस मुक्त बाजारवाद ने आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन पर कब्जा करना शुरू किया। इतना ही नहीं यह नीति अब आदिवासियों के जीवन और उनके भविष्य के साथ भी खेल खेल रही है। विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल किया जा रहा ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया जा रहा है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी साहित्य की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। आदिवासी समाज की संस्कृति, जीवन शैली प्रकृति के साथ तालमेल पर आधारित हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "हम प्रकृति पर कब्जा नहीं करना चाहते न उस पर अपना वर्चस्व जताना चाहते हैं। हम साथ-साथ जीने में विश्वास करते हैं, विनाश में नहीं।"[2] आदिवासी समाज को मुख्यधारा का समाज हमेशा से हेय दृष्टि से देखता रहा हैं। शायद यही कारण है कि उन्हें दबाना, कुचलना उन्हें आसान लगता है।

आदिवासी तथा गैर आदिवासी साहित्यकारों ने आदिवासी अस्मिता के संकट को लेकर चिंता व्यक्त की है। मधु कांकरिया लिखती है कि "आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों, लोकनृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी-बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया है। इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था। वह अपने पुश्तैनी, पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था। बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, मधुपालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई, बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे परंतु आज खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आए उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर दिया है।"[3] वर्तमान साहित्यकारों ने आदिवासियों को केंद्र में रखकर कई कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, व्यंग्य आदि विधाओं में रचनाएँ की है जिसमें आदिवासियों के निवास स्थान, इनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति आदि को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी साहित्य दुनिया का सबसे पुराना व जीवंत साहित्य है।

आदिवासी साहित्य लिखने और समझने के लिए आदिवासियों की समृद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था, जीवन परंपरा और रीति रिवाजों को समझना आवश्यक है। ''आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सहअस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेदभाव व छल कपट से दूर है। वह जमाखोरी या संपत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याए और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।''[4]

कुछ आदिवासी साहित्यकारों व लेखकों ने आदिवासी साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है- प्रसिद्ध आदिवासी साहित्यकार डॉ. विनायक तुमराम कहते हैं - "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वन जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है, जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज-व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरि-कन्दराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय-व्यवस्था ने जिनकी सैंकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह का मुक्ति-साहित्य है आदिवासी साहित्य। वनवासियों का क्षत जीवन, जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है यह साहित्य। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम-वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"[5]

जिस तरह दलित साहित्य के संदर्भ में दलित और गैर दलित साहित्यकार के रूप में चर्चा होती रही है, उसी तरह आदिवासी साहित्य और साहित्यकार के संदर्भ में भी चर्चा होती रही है। इसमें अनेक प्रकार के मतप्रवाह दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आदिवासी कवयित्री रमणिका गुप्ता जी के विचार उल्लेखनीय हैं - "मैं आदिवासी साहित्य उसी को मानती हूँ जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर आधारित होना होगा। अर्थात् आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।"[6] वैसे जो आदिवासी समर्थक साहित्य के रचनाकार होते हैं, वे भी आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण हेतु प्रयत्न करते दिखाई देते हैं।

आदिवासी विमर्श उन ग़ैर-आदिवासी लेखकों को ख़ारिज नहीं कर सकता जिन्होंने आदिवासी समाज और जनजातियों के वास्तविक जीवन यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया। फिर भी दोनों प्रकार के लेखकों में कुछ बुनियादी अंतर है। वरिष्ठ आदिवासी चिंतक रोज केरकेट्टा आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी लेखकों के साहित्य में अंतर स्पष्ट करती हुई कहती है - "ग़ैर-आदिवासी द्वारा रचित आदिवासी विषयक साहित्य में शिल्प है परन्तु आदिवासी आत्मा नहीं है। उसमें सर्जक अपनी दृष्टि से अच्छाई-बुराई का कलात्मक विवरण रखता है, लेकिन आदिवासियों का सच उससे अलग है।"[7]

लिखित मुख्यधारा के साहित्य-समाज में आदिवासियों की अभिव्यक्ति को अल्प स्तर पर रखा गया है, तो यहाँ स्वानुभूति बनाम सहानुभूति की बहस से इतर अनुभव की आधिकारिकता का प्रश्न उठता है। इस संदर्भ में हरिराम मीणा जी कहती है कि - "कोई लेखक जन्मना आदिवासी है कि नहीं यह महत्वपूर्ण है, लेकिन यदि कोई ग़ैर-आदिवासी लेखक अपने आदिवासी जीवन के आधिकारिक अनुभव के आधार पर साहित्य रच रहा है तो ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति आदिवासी साहित्य की श्रेणी में आयेगी इसलिए हमारा यह आग्रह नहीं है कि जो जन्मना आदिवासी नहीं है वो आदिवासी साहित्य नहीं रच सकता। सवाल आधिकारिक अनुभव का है, आधिकारिक अनुभव का मतलब है उसके भौतिक जीवन, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलू की अभिव्यक्ति क्या है? उसकी मानसिकता, भौगोलिक अंचल, परिवेश किस तरह के हैं? उसका ज़मीन, आसमान, हवा, पानी जंगल, पहाड़, नदियों संपूर्ण प्रकृति के साथ संबंध क्या है? तब उस रचनाकार को आदिवासी जीवन का आधिकारिक अनुभव होगा।"[8] आज के लिखित आदिवासी साहित्य में मूल स्वर असहमति का है। औपनिवेशिक काल से अब तक लिखित व मौखिक आदिवासी साहित्य में असहमति का स्वर ही निरंतर तीखा हुआ है। आदिवासी बाहरी समाज के जटिल दावपेंचों को बख़ूबी नहीं समझ पाए। इसलिए आदिवासी साहित्य के नाम पर बाहरी लोग कुछ भी लिख रहे हैं।

निष्कर्ष :

आदिवासी समुदाय में नवीन साहित्य की अवधारणा की निर्मिति के पीछे मुख्य वजह है आदिवासियों के विश्वास के साथ धोखाधड़ी । वे सदैव शोषण, अन्याय का शिकार होते रहे हैं। अपने ही जल, जंगल, ज़मीन से प्रतिबंधित किया जाना, सभ्य समाज द्वारा शोषण, विकास के नाम पर विस्थापन, उनकी सभ्यता संस्कृति को मिटा देने का प्रयास आदि को आदिवासी बुद्धिजीवी वर्ग धीरे-धीरे समझने लगा है। इन सबका विरोध कर असहमति व्यक्त करने एवं जन-जन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य को अपना माध्यम व आधार बना रहे हैं। आदिवासी साहित्य लेखन से आदिवासी लोगों में चेतना जागृत हुई और ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों के साथ-साथ आदिवासी साहित्यकार भी विविधतापूर्ण लेखन कार्य कर पारंपरिक आलोचकों और बुद्धीजीवियों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। शिक्षा के कारण उनमें चेतना विकसित हुई है।

आदिवासी साहित्य का महत्त्व इस कारण भी बढ जाता है कि आदिवासी साहित्य आदिवासियों को अपनी पहचान बनाने का सबसे बडा माध्यम है। उन्हें सम्मान से जीने की प्रेरणा आदिवासी साहित्य के माध्यम से प्राप्त होती है। अपने हक और अपने अधिकारों के लिए लडने की उर्जा यह आदिवासी इसी साहित्य से ग्रहण कर रहा है। संगठन के बिना कुछ हासिल नहीं होनेवाला यह सीख उसने आदिवासी साहित्य से ली है। आदिवासी साहित्य आदिवासी समुदाय की अस्मिता, संस्कृति तथा संघर्ष के लिए चेतना जागृत करता है। आदिवासी साहित्य के सम्मुख अनेक सारी चुनौतियां हैं लेकिन विश्वास है कि इन सारी चुनौतियों का सामना कर और समाजव्यवस्था के साथ किए संघर्ष से यह आदिवासी साहित्य और अधिक निखर उठेगा।

संदर्भ :

1 सं. चौधरी उमा शंकर: आदिवासी कौनः हासिये की वैचारिकी, विनायक तुकाराम 2008, अनामिका प्रकाशन
2 गंगा सहाय मीणा (सं.) : *आदिवासी साहित्य विमर्श*, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 37
3 उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : *आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,* हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 17
4 विशाला शर्मा; दत्ता कोल्हारे : *आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति*, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 21
5 सं. चौधरी उमा शंकर: आदिवासी कौनः हासिये की वैचारिकी, विनायक तुकाराम 2008, अनामिका प्रकाशन,
6 सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, संस्करण 2016, पृ.सं. 24
7 सं. वंदना टेटे, एलिस एक्का की कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2015, पृ.सं. 22
8 सं. रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा जी का साक्षात्कार, युद्धरत आम आदमी, अंक 13, नव. 2014, पृ.सं. 64